



**Original Article**

**21 वीं सदी के हिंदी साहित्य तथा सिनेमा में चित्रित किसान समस्याएँ**

**सिमी के के**

शोधार्थी

हिंदी विभाग एवं शोध केंद्र, राजकीय महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम, केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

Manuscript ID:

IJAAR-C130323

ISSN: 2347-7075

Impact Factor – 8.141

Volume - 13

Issue - 3

January – February 2026

Pp. 109 - 113

Submitted: 19 Jan. 2026

Revised: 28 Jan. 2026

Accepted: 10 Feb. 2026

Published: 28 Feb. 2026

Corresponding Author:

सिमी के के

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI: 10.5281/zenodo.22785612

DOI Link:

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22785612>



Creative Commons



**प्रस्तावना:**

भारतीय सभ्यता में कृषि केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का आधार रही है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक किसान भारतीय जीवन-दृष्टि के केंद्र में रहा है। किंतु 21वीं सदी में वैश्वीकरण, उदारीकरण और नवउदारवादी नीतियों के प्रभाव से कृषि संरचना में गहरा परिवर्तन आया। इन परिवर्तनों का सबसे अधिक प्रभाव कृषक समुदाय पर पड़ा। आज का किसान परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व में खड़ा है। वह एक ओर पारंपरिक कृषि ज्ञान का उत्तराधिकारी है, तो दूसरी ओर बाजार-आधारित अर्थव्यवस्था और तकनीकी प्रतिस्पर्धा से जूझ रहा है। कृषि अब केवल उत्पादन नहीं, बल्कि वैश्विक बाजार, पूंजी, मूल्य-नीति और कॉरपोरेट हस्तक्षेप से जुड़ी जटिल व्यवस्था बन चुकी है। हिंदी साहित्य और सिनेमा ने इस परिवर्तनशील यथार्थ को संवेदनात्मक और आलोचनात्मक दृष्टि से चित्रित किया है।

जहाँ 20वीं सदी में किसान मुख्यतः जमींदारी शोषण का शिकार था, वहीं 21वीं सदी में उसका संघर्ष बहुस्तरीय हो गया है—आर्थिक अस्थिरता, ऋण संकट, आत्महत्या, बाजारवाद, विस्थापन और पर्यावरणीय असंतुलन जैसी समस्याएँ उसके जीवन को प्रभावित कर रही हैं। समकालीन रचनाएँ किसान को दया का पात्र नहीं, बल्कि व्यवस्था से संघर्षरत व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उदाहरणस्वरूप, फाँस (लेखक: संजीव) कृषि संकट की त्रासदी को गहराई से उद्घाटित करता है। वहीं पीपली लाइव किसान आत्महत्या और मीडिया-राजनीति के गठजोड़ पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करती है।

**Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)**

*This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.*

**How to cite this article:**

सिमी के के. (2026). 21 वीं सदी के हिंदी साहित्य तथा सिनेमा में चित्रित किसान समस्याएँ. *International Journal of Advance and Applied Research*, 13(3), 109 - 113. <https://doi.org/10.5281/zenodo.22785612>

भारतीय कृषि की ऐतिहासिक संरचना सामुदायिक श्रम और प्रकृति-आधारित उत्पादन पर आधारित थी। हरित क्रांति ने उत्पादन बढ़ाया, परंतु इसका लाभ बड़े किसानों को

अधिक मिला। 21वीं सदी में कृषि निवेश-प्रधान गतिविधि बन गई है। महंगे बीज, उर्वरक, कीटनाशक और मशीनरी ने लागत बढ़ा दी है, जबकि बिक्री मूल्य अनिश्चित है। न्यूनतम समर्थन



मूल्य की सीमाएँ और बिचौलिया तंत्र किसानों को पर्याप्त लाभ नहीं देते। भूमि का निरंतर विखंडन छोटे और सीमांत किसानों को और कमजोर बनाता है। प्राकृतिक आपदाएँ उनकी आर्थिक स्थिति को और अस्थिर कर देती हैं। रेहन पर रगधू (लेखक: काशीनाथ सिंह) बदलते ग्रामीण समाज और भूमि संकट को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है।

कर्ज व्यवस्था भी एक गंभीर समस्या है। बैंकिंग सुविधाओं की सीमित पहुँच और साहूकारी के ऊँचे ब्याज किसानों को ऋण-जाल में फँसा देते हैं। साहित्य में यह कर्ज केवल आर्थिक नहीं, बल्कि मानसिक बोझ और सामाजिक अपमान का कारण बनता है।

किसान आत्महत्या 21वीं सदी की सबसे गंभीर सामाजिक समस्याओं में से एक है। इसे केवल आर्थिक असफलता नहीं कहा जा सकता। लगातार फसल-विफलता, कर्ज का बोझ, सामाजिक प्रतिष्ठा की चिंता और भविष्य की अनिश्चितता किसान को मानसिक तनाव की ओर धकेलते हैं। ग्रामीण समाज में आत्मसम्मान अत्यंत महत्वपूर्ण है। कर्ज न चुका पाने की स्थिति सामाजिक अपमान का कारण बनती है। परिवार की जिम्मेदारियाँ—बच्चों की शिक्षा, विवाह आदि—अतिरिक्त दबाव उत्पन्न करती हैं।

कड़वी हवा जलवायु संकट और कर्ज की त्रासदी को संवेदनशील रूप से प्रस्तुत करती है। वहीं पीपली लाइव में नत्था का चरित्र यह दिखाता है कि किसान की मृत्यु भी राजनीतिक तमाशा बन सकती है। इस प्रकार आत्महत्या व्यक्तिगत निर्णय नहीं, बल्कि सामाजिक और नीतिगत विफलता का प्रतीक बन जाती है।

21वीं सदी में बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने ग्रामीण जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। मीडिया और विज्ञापन संस्कृति ने नई आकांक्षाएँ पैदा की हैं। सीमित आय के बावजूद

सामाजिक प्रतिस्पर्धा किसानों को ऋण लेकर उपभोग की ओर प्रेरित करती है। बाजारवाद ने कृषि को भी वस्तु में बदल दिया है। बीज और कृषि तकनीक पर कॉर्पोरेट नियंत्रण बढ़ा है। किसान उत्पादन करता है, परंतु मूल्य निर्धारण में उसकी भूमिका सीमित है। मटरू की बिजली का मंडोला भूमि अधिग्रहण और कॉर्पोरेट हस्तक्षेप को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। औद्योगीकरण और विकास परियोजनाओं के कारण भूमि अधिग्रहण बढ़ा है। किसान अपनी जमीन से बेदखल होकर मजदूर बनने को विवश होता है। भूमि उसके लिए केवल संपत्ति नहीं, बल्कि पहचान है।

महाश्वेता देवी की रचनाएँ भूमिहीनता और विस्थापन की पीड़ा को उजागर करती हैं। न्यूटन ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों की राजनीतिक उपेक्षा को रेखांकित करती है।

21वीं सदी के साहित्य में स्त्री किसान की भूमिका पर विशेष ध्यान दिया गया है। खेत में श्रम करने के बावजूद उसे कानूनी रूप से 'किसान' का दर्जा प्रायः नहीं मिलता। पति की मृत्यु या आत्महत्या के बाद वह संपूर्ण जिम्मेदारी संभालती है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री संघर्षशील और आत्मसम्मान से युक्त रूप में उभरती है। मंथन सहकारी आंदोलन और ग्रामीण स्त्रियों की सामूहिक शक्ति को दर्शाती है।

जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा और सूखा कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रहे हैं। मिट्टी की उर्वरता में कमी और रासायनिक खेती के दुष्प्रभाव स्पष्ट हैं। वैश्वीकरण के कारण भारतीय किसान अंतरराष्ट्रीय बाजार से जुड़ गया है। मुक्त व्यापार नीतियाँ मूल्य अस्थिरता बढ़ाती हैं। साहित्य में यह स्थिति पूंजी और श्रम के असमान संबंध के रूप में उभरती है।

21वीं सदी में किसान आंदोलनों ने राष्ट्रीय विमर्श को प्रभावित किया। न्यूनतम समर्थन मूल्य और कृषि कानूनों के विरोध ने किसान को संगठित प्रतिरोध की शक्ति के रूप में



स्थापित किया। साहित्य और सिनेमा ने किसान को केवल पीड़ित नहीं, बल्कि जागरूक नागरिक के रूप में चित्रित किया है।

21वीं सदी में किसान समस्या केवल व्यक्तिगत या क्षेत्रीय संकट नहीं रह गई है, बल्कि यह भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के व्यापक संरचनात्मक संकट का रूप ले चुकी है। कृषि पर निर्भर आबादी का प्रतिशत अब भी बहुत अधिक है, किंतु राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान अपेक्षाकृत कम होता जा रहा है। यह असंतुलन किसान की आय और जीवन स्तर के बीच गहरी खाई उत्पन्न करता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था पहले सामुदायिक श्रम, विनिमय प्रणाली और पारिवारिक सहयोग पर आधारित थी। परंतु उदारीकरण के बाद यह व्यवस्था नकदी-आधारित बाजार तंत्र में बदल गई। इससे कृषि उत्पादन तो बाजार से जुड़ा, परंतु जोखिम भी बढ़ गया। फसल की कीमतें अंतरराष्ट्रीय बाजार, निर्यात-आयात नीति और कॉरपोरेट नियंत्रण से प्रभावित होने लगीं। किसान उत्पादन करता है, किंतु मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया में उसकी भागीदारी न्यूनतम है।

संजीव के उपन्यास फॉस में यह संरचनात्मक संकट अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित हुआ है। उपन्यास का किसान केवल सूखा या कर्ज से नहीं जूझ रहा, बल्कि वह ऐसी आर्थिक व्यवस्था में फँसा है जहाँ श्रम का मूल्य घटता जा रहा है। इसी प्रकार रेहन पर रघू में भूमि का रेहन पर चढ़ जाना केवल आर्थिक विवशता नहीं, बल्कि ग्रामीण अस्मिता के विघटन का प्रतीक है।

भूमि का विखंडन भी संकट का एक बड़ा कारण है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी जमीन का बँटवारा होते-होते जोत का आकार छोटा हो गया है। छोटे और सीमांत किसान आधुनिक तकनीक और सिंचाई साधनों का उपयोग करने में सक्षम नहीं हो पाते।

इससे उत्पादन लागत और आय के बीच असंतुलन बढ़ता है। साहित्य में यह स्थिति अक्सर बेबसी, निराशा और सामाजिक हीनता की भावना के रूप में उभरती है।

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में किसान को केवल निर्धन और भूमिहीन व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं से जूझते नागरिक के रूप में भी चित्रित किया गया है। यह वह वर्ग है जो आर्थिक रूप से कमजोर है, किंतु सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने का दबाव भी झेलता है।

ग्रामीण समाज में शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह और सामाजिक अनुष्ठानों पर होने वाला व्यय किसान को अतिरिक्त ऋण लेने के लिए बाध्य करता है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने नई आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ पैदा की हैं—मोबाइल, मोटरसाइकिल, आधुनिक घर, निजी स्कूलों में शिक्षा—ये सब ग्रामीण जीवन में प्रतिष्ठा के प्रतीक बन गए हैं। सीमित आय के बावजूद किसान इन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कर्ज का सहारा लेता है।

फिल्म पीपली लाइव इस मानसिकता और सामाजिक विडंबना को तीखे व्यंग्य के साथ प्रस्तुत करती है। नत्था का चरित्र केवल आर्थिक संकट का शिकार नहीं है, बल्कि वह मीडिया और राजनीति की सनसनीखेज संस्कृति में फँस जाता है। किसान की त्रासदी यहाँ तमाशा बन जाती है।

इसी प्रकार मटरू की बिजली का मंडोला भूमि अधिग्रहण और कॉरपोरेट हस्तक्षेप के माध्यम से ग्रामीण समाज की जटिलताओं को उजागर करती है। विकास के नाम पर किसान की जमीन छीन ली जाती है, और वह अपनी ही धरती पर पराया हो जाता है। यह विस्थापन केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक भी है।



वैश्वीकरण और उदारीकरण ने आर्थिक असमानता को तीव्र किया है। बड़े कृषक, जिनके पास पूंजी और संसाधन हैं, वे नई तकनीक और बाजार अवसरों का लाभ उठा लेते हैं। जबकि छोटे किसान प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाते हैं। यह असमानता ग्रामीण समाज में वर्ग विभाजन को और गहरा करती है।

हिंदी साहित्य में यह विभाजन नैतिक प्रश्नों के रूप में सामने आता है—क्या विकास का मॉडल न्यायपूर्ण है? क्या उत्पादन और लाभ के बीच संतुलन है? क्या किसान केवल उपभोक्ता बाजार का साधन बनकर रह गया है?

फिल्म कड़वी हवा जलवायु परिवर्तन और आर्थिक असुरक्षा को जोड़ते हुए यह प्रश्न उठाती है कि पर्यावरणीय संकट का बोझ केवल गरीब किसान ही क्यों उठाए? वहीं न्यूटन ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों की राजनीतिक उपेक्षा को रेखांकित करती है। लोकतंत्र का ढांचा मौजूद है, परंतु उसकी संवेदनशीलता सीमित है।

साहित्य में यह स्थिति केवल करुणा नहीं, बल्कि प्रतिरोध की चेतना भी उत्पन्न करती है। किसान आंदोलनों का चित्रण यह दर्शाता है कि किसान अब मौन पीड़ित नहीं, बल्कि अधिकार-सचेत नागरिक है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्त्री का श्रम अत्यंत महत्वपूर्ण है, किंतु उसे प्रायः 'किसान' का दर्जा नहीं मिलता। खेत में बुवाई, निराई, कटाई से लेकर पशुपालन और घरेलू कार्य तक वह निरंतर श्रम करती है। पति की मृत्यु या आत्महत्या के बाद संपूर्ण जिम्मेदारी उसके कंधों पर आ जाती है, परंतु भूमि के स्वामित्व और ऋण सुविधा में उसका नाम अक्सर दर्ज नहीं होता।

समकालीन साहित्य में स्त्री किसान की यह स्थिति प्रमुखता से उभरी है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ग्रामीण स्त्री को संघर्षशील और आत्मसम्मान से युक्त रूप में प्रस्तुत करते हैं।

फिल्म मंथन सहकारी आंदोलन और ग्रामीण स्त्रियों की सामूहिक शक्ति को रेखांकित करती है। यद्यपि यह फिल्म पूर्वकाल की है, किंतु 21वीं सदी के संदर्भ में भी उसकी प्रासंगिकता बनी हुई है।

स्त्री किसान का प्रश्न केवल लैंगिक असमानता का नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय का भी प्रश्न है। साहित्य और सिनेमा ने इस अदृश्य श्रम को दृश्यता प्रदान की है।

जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, सूखा और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएँ कृषि को अस्थिर बना रही हैं। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरता घट रही है। जल स्रोतों का क्षरण और भूजल स्तर में गिरावट भविष्य के लिए गंभीर संकेत हैं।

साहित्य में पर्यावरणीय संकट केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि कथा का केंद्रीय तत्व बनता जा रहा है। किसान प्रकृति से गहरे जुड़ा हुआ है; इसलिए पर्यावरणीय असंतुलन सीधे उसके जीवन को प्रभावित करता है। कड़वी हवा में सूखा और जलवायु परिवर्तन केवल प्राकृतिक घटना नहीं, बल्कि सामाजिक त्रासदी का कारण है। यदि कृषि नीति पर्यावरण संतुलन को प्राथमिकता नहीं देगी, तो आने वाली पीढ़ियों के लिए संकट और गहरा होगा। साहित्य और सिनेमा इस चेतावनी को संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

21वीं सदी में किसान आंदोलनों ने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापक ध्यान आकर्षित किया। न्यूनतम समर्थन मूल्य, कृषि कानून और कॉरपोरेट नियंत्रण के विरोध में हुए आंदोलनों ने यह स्पष्ट किया कि किसान संगठित प्रतिरोध की शक्ति रखते हैं।

समकालीन लेखन में किसान अब केवल शोषित वर्ग नहीं, बल्कि सक्रिय राजनीतिक एजेंट के रूप में उभरता है। साहित्य और सिनेमा में यह परिवर्तन महत्वपूर्ण है। किसान का



संघर्ष अब व्यक्तिगत त्रासदी से आगे बढ़कर सामूहिक चेतना और लोकतांत्रिक अधिकारों की लड़ाई बन गया है।

#### निष्कर्ष:

21 वीं सदी का हिंदी साहित्य और सिनेमा किसान जीवन को बहुआयामी दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। फाँस और रेहन पर रगधू जैसे उपन्यास आर्थिक संरचना की विसंगतियों को उजागर करते हैं, जबकि पीपली लाइव, कड़वी हवा, मटरू की बिजली का मंडोला और न्यूटन जैसी फिल्मों में किसान प्रश्न को दृश्यात्मक और राजनीतिक विमर्श में परिवर्तित करती हैं। किसान विमर्श अब करुणा तक सीमित नहीं, बल्कि आलोचनात्मक चेतना और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन चुका है। यदि किसान सुरक्षित और सम्मानित नहीं है, तो विकास की अवधारणा अधूरी है। अतः आवश्यक है कि कृषि नीति को न्यायपूर्ण बनाया जाए, पर्यावरण-संतुलन को प्राथमिकता दी जाए, स्त्री किसानों को कानूनी मान्यता मिले और मानसिक स्वास्थ्य सहायता की व्यवस्था हो। साहित्य और सिनेमा हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करते हैं कि किसान का सम्मान ही राष्ट्र की स्थायी प्रगति का आधार है।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. शिवमूर्ति. किसान जीवन की कहानियाँ. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
2. संजीव. ग्रामीण समाज और बदलता भारत. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
3. पंकज बिष्ट. भूमंडलीकरण और भारतीय किसान. नई दिल्ली: आधार प्रकाशन.
4. बद्रीनारायण. ग्रामीण भारत का सामाजिक इतिहास. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान.
5. रामचंद्र गुहा. भारत: गांधी के बाद. नई दिल्ली: पेंगुइन.
6. अमर्त्य सेन. विकास के रूप में स्वतंत्रता. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. प्रभात पटनायक. वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था. नई दिल्ली: तुलिका प्रकाशन.
8. आर. अनंतमूर्ति (संपा.). कृषि संकट और समकालीन विमर्श. नई दिल्ली: सेतु प्रकाशन.
9. नंदिनी सुंदर. भूमि, राज्य और समाज. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
10. गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक. उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श और हाशिए के स्वर. नई दिल्ली: रूटलेज इंडिया.
11. महाश्वेता देवी. अरण्येर अधिकार (अनुवादित संस्करण). नई दिल्ली: साहित्य अकादमी
12. संजीव. फाँस. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
13. काशीनाथ सिंह. रेहन पर रगधू. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.